Bhram Rishi KrishanDutt Ji Maharaj Patrika June2013

यौगिक प्रवचन/जून 2013

॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हे वेदवाणी ! तू कल्याण करने वाली है। तू वह वेदवाणी है जो सृष्टि में प्रारम्भ से सँसार के कल्याणार्थ आयी है। हे वाणी ! तेरा जो अनुकरण जो करते हैं उनका वास्तव में कल्याण होता है। तू वह वाणी है जो सूर्य और चन्द्रमा को प्राप्त हुई है। हे वाणी तू वह वाणी है जिसने यह सँसार रचाया है। तू बड़ी उदार व पवित्र है। सँसार में जो तेरा अनुकरण करते हैं वह बड़े ऊँचे और पवित्र बन जाते हैं वही उदार होते हैं।

हे परमात्मन् ! मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि मैं उदार कैसे बन सकता हूँ? मेरी उदारता कहाँ है? आज मैं उदारता को पुकारता चला जा रहा हूँ। हे परमदेव ! वह उदारता कौन से पदार्थ में है। वह उदारता तेरे गुणगान में है, या अपने मानव-जीवन को बनाने में है। उदारता आयेगी या ऋषि-मुनियों के सत्संग से प्राप्त होगी? हे प्रभु ! तू उदार बनाने वाला है यह मुझे निश्चय हो चुका है। प्रभु ! आप उदारों के उदार हैं। यह सँसार आपने रचा है। नित्यप्रति इसको चला रहे हैं। मानव आपको स्वीकार करे या न करे, परन्तु आप अपने कर्तव्य को नहीं त्यागते। आपकी उदारता का आज सँसार में कोई प्रमाण नहीं। आज हम तेरे रचाये हुए पदार्थ को अशुद्ध बनाते रहते हैं। परन्तु प्रभु ! तुम इतने उदार और पवित्र हो कि प्रातःकाल में उसी पदार्थ को शुद्ध और पवित्र दे देते हैं। प्रातः काल में मानव को जीवन देते हैं। रात्रि में निद्रा अवस्था में उसे आनन्द देते हैं। उस प्रभु को कोई माने या न माने परन्तु वह प्रभु अपनी उदारता में सूक्ष्मता नहीं करता। उसकी उदारता इतनी पवित्र है कि कोई नास्तिक हो आस्तिक से परमात्मा की सृष्टि पर विचार करता हो न करता हो, परन्तु वह अपनी उदारता में सूक्ष्मता नहीं करता।

हे मानव ! आज तुझे भी उदार बनना है और कैसा उदार बनना है कि सँसार में कोई मान करे या न करे परन्तु तू अपनी उदारता को न त्याग। यदि कोई तेरा अपमान कर रहा है और तू अपनी उदारता को त्यागता है तो मानो तेरी मानवता शांत हो जायेगी। तुझे अपनी उदारता की रक्षा करनी है। यह लोकेष्णा ऐसी है कि मान अपमान में आ करके तेरी उदारता को सूक्ष्म बना सकती है। आज तुझे इन तरंगों से पार होना है। समुद्र में आयी हुई इन तरंगों में आ गया तो तू डूब जायेगा और ऐसे समाप्त हो जायेगा, जैसे जल के न रहने पर मीन शांत हो जाती है। हे मानव ! तू अपनी उदारता को न त्याग।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अंक : 489 समग्र अंक : 564
वर्ष : 41 समग्र वर्ष : 47

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	1
2.	अनुक्रम		2
3.	पर्व एवम् कलाओं का महत्त्व	पूज्यपाद-गुरुदेव	3-22
4.	चार प्रकार के पुरुष	पूज्यपाद-गुरुदेव	23-27
5.	Who enjoys eternal bliss	Pujyapad Gurudev	28
6.	Spiritual lights	Pujyapad Gurudev	29-37
7.	दान, सूचना, पुस्तकों की सूची आदि		38-40

आवश्यक सूचना

सभी वार्षिक सदस्यों को सूचित किया जाता है कि जिन सदस्यों ने अभी तक वार्षिक सदस्यता की राशि जमा नहीं की है वह कृपया करके मनीआर्डर द्वारा समिति के कार्यालय में या प्रकाशन मंत्री को वार्षिक सदस्यता की राशि भेज दें जिससे कि पत्रिका निरंतर प्रेषित होती रहे।

॥ ओ३म् ॥

पर्व एवम् कलाओं का महत्त्व

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतो से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और उसकी महिमा चहुँ ओर मानो एक ही तुल्यता में रमण करती रहती है। वह विज्ञानमयी हैं। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। क्योंकि वह सीमा से रहित हैं और सीमा में आने वाले नहीं हैं। इसीलिए वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और उसकी अनन्तता का अभ्योदय होता रहता है और वह सदैव नवीन बना रहता है। क्योंकि ज्ञान सदैव एक ही तुल्य रहता है और नवीनतम रहता है, उसमें वृद्धपन नहीं आता क्योंकि व्रजम भाः वर्णः वह वृद्धपन उसी में आता है जिसमें काया होती है। इसीलिए परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान जो है वह एक रस रमण करने वाला है और जो एक रस होता है उसमें वृद्धपन नहीं आता। जैसे मानव के शरीर में आत्मा विद्यमान होता है परन्तु आत्मा में वृद्धपन नहीं आता, आत्मा एक रस रहता है। वह चेतना है, वह अव्यय है। तो मानो देखो इसीलिए जो चेतना है जो अपने में चेतनत्व को धारण किए रहती है उसमें वृद्धपन नहीं आ पाता क्योंकि एक रस रहने वाला है। मानो देखो जिसका निर्माण होता है उसमें वृद्धपन

आता है, उसकी सीमा है और जिसका निर्माण नहीं होता उसकी कोई सीमा नहीं होती और उसमें वृद्धपन नहीं होता। वह सदैव एक रस बना रहता है।

पूज्य महर्षि महानन्द मुनि जी की प्रेरणा

मुनिवरों ! आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है एको रसोसत्म मानो देखो वह परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह भी एक रसतम रहता है। एक ही रसता में रमण करता रहता है इसलिए उसकी कोई सीमा नहीं है, वह सीमा से रहित हैं। उसका ज्ञान और विज्ञान भी सीमा से रहित है। तो वह सीमा में आने वाला नहीं है क्योंकि उसका अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान है। प्रत्येक मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानो उसके ज्ञान और विज्ञान के ऊपर अन्वेषण करता रहा है और विचारता रहा है, अपने में अपनेपन को ही धारयामि बनाता रहा है। तो आओ मेरे प्यारे ! आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं केवल आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें कुछ उद्गीत गा रहा है। हमारे यहाँ देखो, मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी से कुछ प्रेरणा आ रही है। उसी प्रेरणा के आधार पर अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए हम सदैव उद्धत हुए हैं। क्या हमारा प्रेरणावर्णम् देखो यह प्रेरणा आ रही है कि आज का जो दिवस है वह पर्व का दिवस कहा जाता है। **हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में जितने भी पर्व हैं उनका अपना कोई मानो देखो रहस्यतम माना गया है।** उसमें कोई न कोई रहस्य ऐसा आन्तरिक में, परोक्षा में परणित रहता है जिसका प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही अपने में बड़ा महत्त्वदायक माना गया है।

होलिका की विवेचना

आज मानो देखो होलिका अपने में मानो देखो व्रत कर रही है जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे पूर्व काल में भी हमें वर्णन कराया। परन्तु देखो यह सृष्टि के प्रारम्भ से क्या

यह हमारे यहाँ श्रेष्ठ पुरुषों की एक बड़ी उपलब्धि रही है क्योंकि जब कृषक मानो देखो इस पृथ्वी के गर्भ में अन्नाद् मानो परिपक्वता के लिए आता है तो उस समय प्रत्येक गृह में यागों का प्रत्येक नगरों में, गृह का एदयम ब्रहे वह यागों का बड़ा चलन रहा है और वह चलन इसलिए रहा है क्योंकि वायुमण्डल को हम प्रायः ऐसा बना देते हैं जिसमें प्रदूषण न रहे और उसमें पवित्रता आ जाए जिससे देखो वह हमारा जो अन्नाद है वह हमारे गृह में मानो वर्णित हो करके आये और वह निरवयव हो करके हमारे गृह को पवित्र बनाए। तो मानो देखो **प्रकृति को मग्न करने के लिए अग्नि का अग्न्याधान प्रायः परम्परागतों से होता रहा है।** उसमें मुनिवरों ! देखो कृषक क्या सर्वत्र प्राणी मानो देखो उस अग्नि में जो यज्ञाग्नि है जो मुनिवरो ! देखो प्रत्येक नगरों में, प्रत्येक आवर्तियों में बेटा ! देखो यज्ञों का अवधान है सुगन्धि देना और मुनिवरो ! देखो उसमें नवीन-नवीन को देखो उसमें मुनिवरो ! देखो उसमें वसुन्त कर लेना और उसको मुनिवरो ! कुछ न कुछ पान किया जाता है जिससे नवीन अन्न का अपना मानो कोई कृत माना जाता है, उससे परीक्षा का फल आता है। वह परीक्षा क्या, कि अन्न परिपक्व हुआ अथवा नहीं यह अन्न किस प्रकार का है। तो इस प्रकार का भाव मुनिवरो ! देखो मानवीय मस्तिष्को में रहा है। इसी भाव के साथ में इसमें एक मौलिक रहस्य यह भी विद्यमान रहा है कि परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं, देवताओं को देखो हुत प्रदान करते हैं। हे देवताजनों ! हे अग्नि ! तू हमारा- वह परमपिता परमात्मा भी अग्निमयी स्वरूप माना गया है। मानो देखो यह अग्नि अपने में देखो सभी देवताओं को जब वह भोज्य प्रदान करती है तो कोई न कोई देवता अपने रहस्यों में रहस्यतम को लिए हुए हो और उसी रहस्य को ले करके मेरे प्यारे ! देखो प्रकृतिवाद को ऊर्ध्वा में प्रदूषण से रहित करने के लिए प्रत्येक कृषक अपने गृह में, अपने नगरों में बेटा ! देखो इसका प्रयत्न करते रहे हैं। प्रदूषण

को शान्त होने के लिए सबसे उत्तम एक ही क्रियाकलाप है - देखो अग्नि के माध्यम से अग्नि के मुखारबिन्दु में देखो नाना प्रकार का चरू प्रदान किया जाए। क्योंकि पुष्ट और मधु देखो मिष्ठ और पौष्टिक और सुगन्धित और मुनिवरो ! देखो रोगनाशक यह सर्वत्र गुणों वाला चरू बना करके अग्नि में स्वाहा कह करके अपनी वाणी से वेदों का उद्गीत गाते हुए।

मेरे पुत्रों ! देखो यह क्रिया अपने में क्रियाकलाप चला आ रहा है। यह सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानो देखो आर्यत्व और देखो वैदिक साहित्य में। वैदिक साहित्य से इसको सजातीय बनाया है। गायत्राणी छन्दों का पठनपाठन होते हुए वेद-मन्त्रों का उद्गीत गाया जाता है। तो इसके पिछले भाग में यह रहस्यतम रहता है कि हमारा जो अन्न है वह हमारे गृह में आये परन्तु देखो प्रदूषण से रहित हो करके आये जिससे मानो देखो प्रकृति का कोई प्रकोप न हो और **प्रकृति को प्रसन्न करने का सबसे सहज एक ही मार्ग है** कि हम अग्नि को देवताओं का मुख स्वीकार करके अग्नि के मुखारबिन्दु में नाना प्रकार का चरू प्रदान करके मानो वायुमण्डल में इन चरूओं का मुनिवरो ! देखो वह चरू का सूक्ष्म रूप बन करके वह तरल के रूप में परिणीत होता हुआ मुनिवरो ! एक दूसरे परमाणु में परमाणुता की आभा को प्राप्त कराता रहा है।

दीपावली का स्वरूप

आओ मेरे प्यारे ! देखो हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में प्रायः अपना-अपना कोई महत्त्व माना गया है। दो पर्व हमारे यहाँ बड़े महत्त्वदायक हैं, एक मानो होलिका और दूसरा मुनिवरो ! देखो दीपावली का। दीपावली के दिवस भी इसी प्रकार दीपयाग होते रहते हैं। देखो वह दीप यागों से वायुमण्डल मानो देखो उससे छायमान हो जाता है और छायमान हो करके वह उस समय कृषक देखो अपने पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना करता है और इस दिवस मानो देखो

वह उसके गृह में आने का समय होता है और चन्द्रमा से उपासना करते हुए हे चन्द्रवाह तू मानो अपनी कान्ति से हमारे अन्न को पवित्र बना। तू वनस्पतियों का धिराज है, तू वनस्पतियों में रस को प्रदान करने वाला है। माता के गर्भ-स्थल में जब हम जैसे शिशु होते हैं तो उस समय तू ही मानो देखो रसों का वाहन, देखो रसों को प्रदान करता रहता है, अमृत देता रहता है। वही अमृतमयी कहा जाता है तो इसलिए हमारे यहाँ यह जो पर्व हैं इनका अपना-अपना बड़ा विशेष महत्त्व माना जाता है। तो इस महत्त्वदायक को हम स्वीकार करें और प्रातः, साँयकाल मानो देखो उसमें हुत करते हुए अग्नि को देवता, देवताओं का भी देवता स्वीकार कर के मानो देखो उसमें याग का प्रादुर्भाव अपने में याग का अवरत करें। जिससे मानो देखो अजामेघ यागों में और देखो अश्वमेध यागो में भी इसका बड़ा महत्त्व आया है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपनी लेखनियाँ बद्ध करके इन पर्वों का बड़ा वर्णन किया है और इनका बड़ा महत्त्वदायक मानो रहस्यतम मानव के समीप नियुक्त किया है। साधारण रूपों में यह वसन्त ऋतु है मानो देखो ऋतु के आधार पर प्रत्येक मानो देखो देवता अपनी-अपनी कोई छवि लिए हुए होता है। यह मानो देखो चन्द्रमा अपनी अमृतमयी छवि ले करके और यह आकृतियों में रत्त होता रहा है, अमृत को देता रहता है और दिशा को अपने में धारण करता रहता है।

विचार आता रहता है यह चन्द्रमा हमारा देवत्व है। माता के गर्भस्थल में जब मानो एक बिन्दु है उस बिन्दु में शिशु है और वही शिशु मेरे प्यारे ! माता के गर्भ में प्रवेश होते ही मानो देखो चन्द्रमा अमृतमयी है और सूर्य प्रकाशमयी है और अग्नि उष्ण बनाने वाली है। और मुनिवरो ! देखो ओढ़न और आसन यह जल है और गुरुत्व मेरे प्यारे पिण्ड का द्युतक है, यह पिण्ड रूप बना देता है। तो इस प्रकार मुनिवरो ! देखो माता के गर्भ में हम जैसे प्यारे पुत्रों का निर्माण होता रहता है। निर्माणवेत्ता निर्माण करता है परन्तु मेरी भोली माता

उस निर्माणवेत्ता से वंचित है। तो इसलिए हमें उसका अवधान करना चाहिए। तो विचार क्या मुनिवरो ! देखो इन पर्वों का अपना बड़ा महत्त्व माना गया है। हम अपने महत्त्व से मुनिवरो ! देखो दूरी न हो यह महत्त्व अपने स्थान पर एक स्थलियों पर सदैव विद्यमान हो जाए।

नरसिंह समाज

विचार विनिमय क्या मुनिवरो ! देखो होलिका को हम कही पहलानम भू वर्णनम ब्रहे मुझे महानन्द जी ने वर्णन कराया कहीं हिरण्याकुश की भोजाई से मानो देखो इसका कहीं समन्वय किया है, कहीं प्रह्लाद के जीवन का इससे समन्वय है। तो मेरे प्यारे ! देखो वह मुझे स्मरण आता रहता है उस काल की चर्चाएँ, वह काल बड़ा भव्य काल कहा जाता है। वह राष्ट्रीय एक वृत्तियाँ हैं। मेरे प्यारे ! देखो महाराजा जो महात्मा प्रह्लाद थे वह परमात्मा के बड़े निष्ठावान थे और पिता उससे देखो द्वितीय भाग में वह देखो नाअस्ति देखो जिसको नास्तिक कहते हैं वह उन विचारों में रत्त रहने वाला। वह राजा का, राष्ट्रीयता का उसे अभिमान था और यह कहता कि मैं ही मानो देखो नाअस्ति मैं ही परमात्मा के रूप में विद्यमान हूँ। वह यह कहा करते थे परन्तु देखो महात्मा प्रह्लाद यह कहा करते कि नहीं परमात्मा तो सर्वत्र है, वह सर्वज्ञ और वह कण-कण में ओत-प्रोत है। आप भगवान् नहीं हो सकते। इस प्रकार उनको यातना देना पिता ने प्रारम्भ किया। नाना प्रकार की यातनाएँ क्या मानो उस समय एक नरसिंह नाम का एक मानो देखो समूह सँसार में मानो देखो राष्ट्रीय स्तर पर उग्र रूप को धारण करके समीप आया और वह देखो हिरण्याकुश के मानो देखो सामान्यत्व उसका नेतृत्व करने वाले महात्मा प्रह्लाद थे और वह कहते कि परमात्मा का ध्यानावस्थित हो जाओ और देखो उसी नरसिंह समाज ने मुनिवरो ! देखो वह हिरण्याकुश को नष्ट किया था। कोई मानो देखो ब्रह्मणे व्रतम ब्रव्हा वह नरसिंह भगवान समाज का नाम ही मानो देखो नरसिंह भगवान के नाम से

एक समाज था और वह समाज मानो देखो राष्ट्रीयता को ले करके और राज्य को यह उच्चारण करते कि राजा यह सुयोग्य नहीं है मानो देखो उसको दूरी करो और हमारा नेतृत्व करने वाला प्रह्लाद है। यह राज का स्वामी बनेगा और हम मानो देखो हमारा यह नेतृत्व कर रहा है तो वही मुनिवरो ! देखो वह सिंह एक नाद हुआ और सिंह ने ही मुनिवरो ! देखो नरसिंह जी से जिस समाज का नाम नरसिंह था। नरसिंह का अभिप्रायः यह है कि देखो वह सिंह की भाँति और देखो सिंह की भाँति अपने नाद में रत्त रहने वाला समाज। मेरे प्यारे ! इसमें सात्विकता और चरित्रता की प्रतिभा होती है और वह परमात्मा के आस्तिक और धर्मज्ञ देखो जो धर्म के मर्म को जानने वाले ऐसा जो समाज है उसको मानो नरसिंह समाज कहा जाता है। वही नरसिंह समाज था जो मुनिवरो ! देखो वह हिरण्याकुश को मुनिवरो ! देखो उन्होंने नष्ट किया और नष्ट करके देखो प्रह्लाद को अपना धिराज बनाया। ऐसा देखो साहित्यिक विचारों में आता रहा है। बेटा ! देखो उनका उनकी भोजई से उसका समन्वय किया कि अग्नि में लेकर के विद्यमान हो गई मानो देखो यह प्रह्लाद के जीवन से भी एक समन्वय रहता है। **वही पूर्णिमा का दिवस है जिस दिवस मानो देखो होलिका का पर्व अपने स्थान में बड़ा ऊर्ध्वा में गमन करता रहा है।** तो उसे सत्ता, एक शक्ति, एक सत्ता प्राप्त थी कि देखो जो अग्नि में दूसरो को ले करके वह विद्यमान होते तो उसके प्राणों की रक्षा देवता करते हैं। देखो वह स्वतः भष्म हो जाता है। तो वह हिरण्याकुश की जो भोजई होलिका थी वह उसी अभिमान में मानो देखो नष्ट हो गई अग्नि में और प्रह्लाद की रक्षा नरसिंह समाज ने की।

विचारने का अभिप्रायः यह कि हमारे यहाँ राष्ट्रीयता में जब एक समाज का कोई निर्माण होता है उसमें कोई न कोई रहस्य होते हैं इसीलिए **हमारे यहाँ होलिका का जो पर्व है यह महाराजा**

हिरण्याकुश से भी पूर्व काल से रचित रहा है। यह कृषकों का क्या प्रत्येक मानव का देखो एक व्यवहार रहा है। क्या हम मुनिवरो ! देखो इस दीपावली को और होलिका के दिवस हम प्रत्येक गृह में देखो याग करें और वह सुगन्ध हमारी वायुमण्डल में प्रसारित हो जाए और यह प्रेम का प्रतीक जैसे मानो देखो वह अमृतम देखो वसन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतु का दोनों का समन्वय होता है। दोनों एक-दूसरे में प्रीती करते हैं कि प्रत्येक प्राणी को अपने में प्रीति युक्त रहना चाहिए और अपने समाज को, अपनी मानवीयता को पवित्रतता में ले जाना चाहिए। तो विचार-विनिमय क्या मेरे प्यारे ! देखो यह राष्ट्रीय अपने में विचार-विनिमय क्योंकि राजा के राष्ट्र में समाज ऐसा होना चाहिए जैसे नरसिंह समाज था। महात्मा प्रह्लाद को पिता के नाते उन्होंने बड़ी यातनाएँ दीं और वह यातनाओं से पूर्णता को प्राप्त हो गये। अन्तिम में देखो सिंह समाज बना और सिंह समाज का नेतृत्व करने वाला प्रह्लाद बना और वह परमात्मा का भक्त होने से मानो देखो उसको अवृत्तियों की उपाधियाँ प्रदान कीं और वही देखो हिरण्यकुश को नष्ट करके और मुनिवरों ! देखो उन्होंने अयोध्या का उसे राजा बनाया और राजा बना करके वह अपने में मानो देखो समाज का नेतृत्व करते थे। धिराज बनें।

पर्वों के रहस्यों को विचारना चाहिए

मेरे प्यारे ! देखो विचार-विनिमय क्या है हमारा इन वाक्यों का विचार यह कि हम अपने में मानो अपने पर्वों को अपने से दूरी न करें क्योंकि इनमें कोई रहस्य होता है। यह राष्ट्रीयता का एक मानो द्युतक है इसलिए प्रेमपूर्वक हो करके चरित्र में ऊर्ध्वा की उड़ान उड़ते हुए मानो देखो अपने पर्वों को मानते हुए अपने में मानो देखो उसका अवधान होना चाहिए। वह पर्व अपनी-अपनी स्थलियों पर बड़े विचित्र रहे हैं परन्तु देखो मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने ऐसा वर्णन किया है कि देखो इन पर्वों में याग न रह

करके अब केवल देखो वह जीवों का विनाश होता है। उसे अग्नि में मानो देखो याग न रहने से कोई और ही कोई रूप बन गया है। वह मानो वाममार्ग का रूप बना है। तो वाममार्ग का रूप नहीं बनाना चाहिए उसको आर्यत्व से गुथा हुआ एक समाज का समूह हमें स्वीकार करना चाहिए जिससे हमारे पर्वों में कोई न कोई मानो देखो रहस्यतम होने चाहिए। जिन रहस्यों को लेकर के मानव अपने में, ऊर्ध्वा में उड़ाने उड़ता रहे और जीवन को महान और पवित्र बनाता रहे। तो आज मैं बेटा ! तुम्हें विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह क्या मुनिवरो ! देखो हमारे पर्वों का बड़ा अपना रहस्य माना जाता है। कोई भी पर्व हो उसमें कोई रहस्य है। कोई विधाता भोजई से मानो देखो दोनों का समन्वय रहता है। किसी पर्व का माता से और पिता पुत्र से देखो अपना समन्वय रहता है, कहीं शिक्षा से समन्वय रहता है। तो इसी प्रकार कोई न कोई इनमें रहस्यतम विद्यमान होता है तो उन रहस्यों को हमें विचारना चाहिए।

दो प्रकार के याग

हमारे यहाँ जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने शतपथ ब्राह्मण नाम की पोथी का निर्माण किया, लेखनी बद्ध की तो उन्होंने प्रत्येक गृह-स्वामी और गृह-स्वामिनी के लिए दो प्रकार के यागों का अवधान किया है अथवा उसमें वर्णन किया है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन किया है कि एक अमावेष्टि और एक पूर्णेष्टि दो प्रकार के याग हैं। मानो देखो **दीपावली अमावेष्टि कहलाता है और देखो यह होलिका का यह पूर्णेष्टि कहलाता है।** देखो पूर्णेष्टि का अभिप्रायः यह क्या चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है और वह अपने प्रकाश में मानो देखो रात्रि को अपने में निगलने वाला है। इसी प्रकार यह इसीलिए पर्व देखो यह पूर्णिमा का दिवस है, हे प्रव्हा ब्रहे, हे मानव ! तेरा जीवन यदि देखो धन्यधान्य से या तेरा जीवन सब सम्पदा से परिपूर्ण हो जाए तो तू चन्द्रमा की भाँति रहे

परन्तु प्रकाशवान रहे। परन्तु तेरे में अभिमान नहीं आना चाहिए जिस समय तुझे अभिमान आ जाएगा उसी समय तेरा जो द्रव्य है वह जो तेरी वृति है वह दूषित बनती चली जायेगी परन्तु देखो इसी प्रकार अमावेष्टि कहलाता है। अमावेष्टि के पिछले भाग में एक रहस्य मानो वह यह कि अमावस्य रात्रि का दिवस होता है जहाँ चन्द्रमा की एक भी कला मानो कलाकृतियों में नहीं आती हैं। प्रकाश का एक अँकुर भी नहीं रहता है। तो उस समय देखो याचक यह प्रार्थना करता है और वह अमावेष्टि याग करके कहता है क्या हे प्रभु ! मुझे पार ले चल, मेरे जीवन में यह अज्ञान न बना रहे। मेरे जीवन में यह अन्धकार नहीं बना रहे, मैं अन्धकार से प्रकाश में जाना चाहता हूँ ! हे प्रभु ! प्रकाश यदि मुझे आ जाए तो मुझे अभिमान नहीं हो और यदि मेरे जीवन में अन्धकार आ जाए तो मैं इतना भिन्न न हो जाऊँ जिससे मेरे जीवन की मृत्यु हो जाए और मैं अज्ञान में प्रवेश कर जाऊँ। ऐसा मेरे जीवन में न हो। परन्तु मेरा जीवन ऐसा ज्ञान में हो कि जिससे अमावस्य को भी मैं मानो पूर्णिमा में परिवर्तित कर सकूँ और पूर्णेष्टि को भी मैं मानो देखो निरभिमानी बना करके एक रस में विचार सकूँ। ऐसा प्रायः मेरा जीवन होना चाहिए। तो बेटा ! देखो याचक यह प्रार्थना करता है। तो दो प्रकार के यागों का वैदिक साहित्य में बड़ा वर्णन आता रहा है–एक अमावेष्टि एक मानो अमृते पूर्णेष्टि दो प्रकार के यागो का वर्णन है और इनमें, दोनों में याग होने चाहिए जो अन्धकार को भी प्रकाश में लाओ और प्रकाश को भी मानो सामान्य बनाने के लिए तत्पर हो जाओ। तो इस प्रकार मुनिवरो ! देखो मानव के ये पर्व हैं। **इन पर्वों के गर्भ में कोई न कोई रहस्य इस प्रकार का विद्यमान है जो वायुमण्डल को पवित्र बनाता है परन्तु उसमें याग होने चाहिए।** हमारे यहाँ इन यागों का अपना बड़ा महत्त्व माना गया है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही ऋषि मुनि इसके ऊपर अन्वेषण करते रहे हैं और प्रत्येक वेद-मन्त्रों में ज्ञान और विज्ञान को अपने में धारयामि बनाते रहे हैं।

वरुण की मीमांसा

विचार विनिमय क्या बेटा ! मैं विशेष चर्चा न देता हुआ आज तुम्हें मैं देखो उसी क्षेत्र में ले जाने के लिए आया हूँ जहाँ बेटा ! मैं सत्यकाम की चर्चाएँ कर रहा था। वैदिक साहित्य में नाना प्रकार की आख्यायिकाएँ आती रहती हैं। जहाँ पर्वों का अपना महत्त्व है वहाँ कलाओं का भी अपना बड़ा महत्त्व माना जाता है। मेरे प्यारे ! देखो सत्यकाम ने जब दो कलाओं का वर्णन अपने में ग्रहण कर लिया तो तीसरी कला का नामोकरण उन्होंने मुनिवरो ! देखो प्रतीचीदिग् माना है। मानो देखो पश्चिम दिशा को प्रतीचीदिग् कहते हैं, जो उनको उन्होंने बेटा ! अपना महत्त्व दिया। उन्होंने कहा, वृषभ कहता है हे सत्यकाम ! हम मानो, एक सहस्र हो गये हैं और हमें गुरु के आश्रम को ले चलो। आचार्य कुल में हमारा वास होना चाहिए। तो इस प्रकार मुनिवरो ! देखो अपने में जब सत्यकाम चलने को तत्पर होता है, उस समय वृषभ कहता है कि मैं तीसरी कला का तुम्हें ज्ञान कराता हूँ। वह मेरे प्यारे ! तीसरी कला प्रतीचीदिग् है। मानो देखो प्रतीचीदिग् कहते हैं जो पूर्व और दक्षिणाय जो **पश्चिम में मानो देखो वरुण का वास रहता है** वर्णनं ब्रह्मा वर्णनम् ब्रह्मे क्रतम। मुनिवरो ! **क्योंकि देखो अन्नाद का जो स्वामी है वह वरुण कहलाता है।** माता वसुन्धरा के गर्भस्थल में जब मानो देखो उसकी प्रतिभा आवर्ती हो जाती है तो उस समय इसके गर्भ में नाना प्रकार के अन्नाद का जन्म होता है। यह हमारे यहाँ माता का नाम पृथ्वी को वसुन्धरा के रूप में वर्णित किया गया है। क्योंकि वसुन्धरा कहते हैं जिसके गर्भस्थल में बेटा ! हम सब वशीभूत रहते हैं। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में **वसुन्धरा नाम माता का है। वसुन्धरा नाम पृथ्वी का है और वसुन्धरा परमपिता परमात्मा को कहा जाता है।** मेरे प्यारे ! माता को इसलिए वसुन्धरा कहते हैं क्या उसके गर्भस्थल में बेटा ! निर्माण होता है और वह उसी में वशीभूत रहते हैं। हे माँ वसुन्धरा ! तू हमारा कल्याण करने

वाली है और मेरे प्यारे ! माता के गर्भस्थल में शिशु पनप रहा है परन्तु माता उसे अपने में धारण कर रही है तो उसे इसलिए माता को वसुन्धरा के रूप में वर्णित किया गया है। मेरे प्यारे ! देखो वसुन्धरम ब्रह्मा वाचन्नमम् ब्रह्मे देवाः। तो मुनिवरो ! देखो देवताजन उसके अंग-संग रहने से देवत्व को धारण करते रहते हैं। तो विचार आता है बेटा ! उस माता का नाम वसुन्धरा कहा जाता है जिसके गर्भस्थल में बेटा ! हम सब वशीभूत रहते हैं। उसी के गर्भ में नाना प्रकार की प्रतिभा को पान करते रहते हैं परन्तु **माता कौन सी वसुन्धरा होती है जो वसुन्धरा मुनिवरो ! ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहने वाली है।**

मुझे स्मरण आता रहता है **माता मदालसा का जीवन।** माता मदालसा मेरे प्यारे ! देखो अपने में यह विचारती थी जब वह बाल्यकाल में अध्ययन करती थी क्या मैं गृह में प्रवेश, यदि मैं चली गई। गृह में मैं जाऊँगी तो मैं अपने अनुकूल सन्तान को जन्म देना चाहूँगी। मैं अपने में, तपस्या में सन्तान को जन्म दूँ। तो जब मुनिवरो ! देखो माता मदालसा मानो देखो ब्रह्मणे देखो अवर्तम् मनु वंश में जब उसका संस्कार हुआ, मनु वंश में संस्कार होने से मेरे प्यारे ! जब गृह में प्रवेश हो गया तो राजा से उसने यही कहा था कि हे राजन ! पाँच वर्ष तक मेरी शिक्षा ब्रह्मचारी को होनी चाहिए। पाँच वर्ष के पश्चात् आपकी देखो राजा की रक्षा (शिक्षा) हो परन्तु पाँच वर्ष तक मेरे अवध ाान् में रहना चाहिए। राजा ने यह स्वीकार कर लिया। बेटा ! जब माता मदालसा के गर्भ में आत्मा का प्रवेश होता तो वह मुनिवरो ! देखो आचार्य के कुल में जो प्राणायाम करती थी। प्राण को जैसा मैंने पूर्व काल में वर्णन किया है, क्या प्राण को अपान में, अपान को व्यान में और व्यान को समान में और समान को मुनिवरो ! देखो वह उदान में प्रवेश करते हुए देखो उसका निदान और माता वह विचित्र और प्राणायाम करने वाली होती है जो प्राणों के माध्यम से अपने आत्मा को मुनिवरो ! देखो अपने

गर्भस्थल में उस आत्मा से वार्ता प्रगट कर सके जो आत्मा उसके गर्भ में विद्यमान है। हे माता ! तेरा विज्ञान बड़ा विचित्र माना गया है। वैदिक साहित्य में जब तू प्रवेश हो जाती है तो मानो उस समय तुझे प्रतीत होता है कि वेद-मन्त्र क्या कहता है। वेद-मन्त्र कहता है माताम् भूतम ब्रह्मे गर्भश्यसुतम ब्रहे वाचन्नमम् शिशु वर्णनम् ब्रव्हे व्रतम देवाम् तपनाम भूतम ब्रह्मा लोकाम्। मेरे प्यारे ! वेद का मन्त्र कहता है हे माता ! जिस समय वेद का मन्त्र यह कहता है, तेरा, क्या जिस समय तेरे गर्भस्थल में हम जैसे शिशु होते हैं तब उस समय मानो तू अपने अर्न्तध्यान हो करके प्राणों के माध्यम से मानो देखो प्राण को उदान में प्रवेश करके और उदान को व्यान में। इसी प्रकार जब करती है, जब एकाग्र करने का प्रयास करती है, तो अपने अनुभव से अपने प्राणों के माध्यम से तू गर्भ की आत्मा को दृष्टिपात करती है और उससे कहती है कथनोसि, हे आत्मा ! तू मेरे यहाँ मानो देखो तू किस प्रकार अपने क्रियाकलापों को वह जान लेती है माता। तो मेरे प्यारे ! देखो **माता वही होती है जो पूर्ण आयु देने वाली हो और माता वही वसुन्धरा कहलाती है जो अपने गर्भ में वसु, वसु बना करके अपने में बसा करके उसे महान् बना देती है।** तो मेरे प्यारे ! देखो कहीं प्राण को अपान में और अपान को व्यान में और व्यान को समान में और समान को उदान में प्रवेश करके चित्त के मण्डलों में प्रवेश हो जाती है। तो मेरे प्यारे ! देखो माता जो इस प्रकार का अवधान करके बाल्य को ब्रह्मविद्या देती है और ब्रह्म का ध्यानावस्थित हो जाती है तो माता के गर्भस्थल में वह ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। वह ब्रह्म का बखान करने लगता है और माता अपने में बड़ी प्रसन्न होती है। तो बेटा ! देखो उस माता, वह माता बड़ी सौभाग्यशाली होती है जिस माता के गर्भ से मानो देखो ब्रह्मवेत्ता का जन्म हो जाए। ब्रह्म निष्ठावादी का जन्म हो जाए तो माता का जीवन सफल हो गया।

मेरे प्यारे ! देखो मातम ब्रह्मे इसी प्रकार तू प्राचीदिग् वरुणो देखो तू वरुण बना और वरुण का अभिप्राय यह जैसे एक मानव वरता है। जैसे मुनिवरो ! देखो संस्कार होता है और मुनिवरो ! देखो पति को पत्नी वरती है और पति को देखो वाराः वर्तम मानो देखो एक दूसरे में वर लेते हैं। जैसे पाण्डित्व को यजमान यज्ञशाला में निर्वाचन करता है, उसे वरता है। इसी प्रकार जैसे भक्त भगवान् को वरता है, उसको अपना वरूण बनाता है और वही उसका वरणीय कहलाता है, इसमें बेटा ! वह रत्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे ! देखो वह प्रतीचीदिग् वरुणो ! मानो देखो वह वरूण है। हे माता ! तू उसको अपना वरूण बना और वरूण बना करके देखो प्रतीची देखो वह अन्न का स्वामी है। वह अन्नाद का स्वामी माना गया है। जब मुनिवरो ! देखो कृषक के अन्नाद में मानो देखो बलवती होती है। तो विचार आता रहता है बेटा ! देखो प्राचीदिग् प्रतिअमृतम मानो देखो उसको वरूण बना करके अपने में धारण करना चाहिए। तो मेरे पुत्रो ! देखो विचार आता है कि वह वरुण है और वरुण कहते हैं बेटा ! **जल को भी वरूण कहते हैं। परमात्मा का नाम भी वरूण है और वरूण नाम मुनिवरो ! देखो आत्मा का है** जहाँ यह पँच-महाभूत उसे अपना वरणीय बनाते हैं। तो पँच-महाभूत मेरे प्यारे ! देखो उसके सन्निधान मात्र से अपने में क्रियाकलापों में तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार जैसे यज्ञशाला में ब्रह्मा का वरण होता है और यजमान उसे अपना वर लेता है, वरण बनाता है। वरण बनाते ही मेरे प्यारे ! देखो याग अपने में पूर्णता के आंगन में प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार परमात्मा अपना वरणीय है क्योंकि परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह जगत चल रहा है। तो वह वरणीय है उसको वरना चाहिए। प्रत्येक मानव को परमपिता परमात्मा को अपना वरूण बना करके वह अपने में उसको वर्णनम् ब्रह्मा, वरूण बना करके बेटा ! गमन करना चाहिए जिससे देखो वह अपने में पवित्रता को धारण कर सके।

विचार आता रहता है बेटा ! वह वरणीय है। आत्माम् भूतम ब्रह्मा देखो आत्मा, **पँच-महाभूत ही तो उस आत्मा को अपना वरणीय बनाते हैं।** तो विचार-विनिमय क्या कि माता का नाम वसुन्धरा कहलाता है। वह वसु है, अपने में बसा रही है। हम जैसे पुत्रों को बसा रही है। बेटा ! जब परमपिता परमात्मा निर्माण करता है, माता के गर्भस्थल में निर्माण करता है। मेरे प्यारे ! देखो बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार, दो सौ दो नाड़ियों का निर्माण होता है और वह निर्माण करने वाला चैतन्य देव है। और वह जब निर्माण करता है परन्तु मेरी भोली माता नहीं जानती कौन निर्माण कर रहा है। बेटा ! कहीं बुद्धि का निर्माण करता है। मानो आन्तरिक जगत का जब निर्माण करता है तो बेटा ! नाड़ियो के समूह का निर्माण उसके साथ-साथ ही देखो वह मन की वृतियों का निर्माण करता है और मन की द्वितीय प्रवृत्ति का नाम देखो बुद्धि है। जो बुद्धि है, मेधा है, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी कहलाती है। प्रज्ञावी में जा करके देखो जब **वह बुद्धि से दृष्टिपात करता है और मेधा से उसे जान लेता है और ऋतम्भरा में मौन हो जाता है और प्रज्ञा में बेटा ! परमात्मा का वह दर्शन कर लेता है।**

मेरे प्यारे ! देखो इसी प्रकार देखो यह अम्रतम कहलाता है– यह मन की यह दशा है क्योंकि **मन का दूसरा रूप बुद्धि है और तीसरा मानो देखो चित्त कहा गया है** जहाँ नाना प्रकार के संस्कारों का समूह रहता है। मुझे बेटा ! देखो उद्दालक ऋषियों की चर्चाएँ स्मरण आती रही हैं और देखो अंगिरस ऋषियों ने तो मौन रह-रह करके बेटा ! देखो चित्त के मण्डल को जानने का प्रयास किया है और चित के मण्डलों को जान करके बेटा ! एक **श्वेता अंगिरस** कहलाते थे उन्होंने बेटा ! इतना महान् तप किया और तप करने से बेटा ! वह पच्चासी वर्ष तक मौन रहे और मौन रह करके मेरे प्यारे ! देखो अपने में चिन्तन करते रहे, अपने संस्कारों को उद्बुद्ध करते रहे वह जो संस्कारों का समूह इतना

विशाल है। उन्होंने बेटा ! देखो पच्चासी वर्षों में वायु का सेवन करते, वनस्पतियों का सेवन करते, मेरे प्यारे ! कहीं जल का पान करते और तपस्या में परणित रहे। परन्तु पच्चासी वर्ष तक वह मौन रहे परन्तु **मौन रह करके वह लगभग देखो एक लाख पच्चासी हजार जन्मों की मुनिवरो ! प्रतिभा को जान पाये थे।** मेरे प्यारे ! देखो जन्म जन्मान्तरों के संस्कार हमारे अन्तःकरण में विद्यमान होते हैं और वही अन्तःकरण मानो देखो **जब तक इस आत्मा के चित के मण्डल में जब तक संस्कार विद्यमान रहते हैं जब तक मुनिवरो ! देखो मानव का आवागमन बना रहता है तब ही तक बेटा ! माता के गर्भ में आना जाना है और योनियों को प्राप्त करना है और जब चित्त का मण्डल मेरे प्यारे ! संस्कारों से विहीन हो जाता है उसी को मेरे पुत्रो ! देखो मोक्ष की पगडण्डी माना गया है।** तो विचार आता रहता है मोक्षाम् भूतम ब्रह्मा जब संस्कारों से विहिन हुआ तो मोक्ष बन गया। बेटा ! देखो वह कल्प कल्पान्तरों तक बेटा ! अपने प्रभु के राष्ट्र में रहता है। प्रभु के आनन्द में आनन्दित रहने वाला वह आत्मा है।

विचार आता है बेटा ! आत्मा के साथ में पञ्च-महाभूतों का जो मिलन है, पञ्च-महाभूतों का जो सूक्ष्म रूप है, **बुद्धि से भी सूक्ष्म वह चित्त कहलाता है और चित्त के पश्चात् बेटा ! देखो अहंकार आता है।** अहंकार कहते हैं जो पिण्डों का निर्माण करता है। यदि अहंकार नहीं होगा तो पिण्डों का निर्माण नहीं होगा। एक पिण्ड नहीं बेटा ! मानव का पिण्ड है, प्राणी मात्र का पिण्ड बना हुआ है, लोक लोकान्तरों के पिण्ड बने हुए हैं, जो बेटा ! लोक-लोकान्तरों के रूप में विद्यमान हैं। नाना प्रकार के नक्षत्र बने हुए हैं जैसे यह पृथ्वी मण्डल है और पृथ्वी के अंग-संग रहने वाला मेरे प्यारे ! देखो वह शुक्र कहलाता है। शुक्र के अंग-संग रहने वाला बुध कहलाता है और बुध के अंग-संग

रहने वाला मेरे प्यारे ! देखो मंगल रहता है और मंगल मण्डल के अंग-संग रहने वाला अरुन्धति रहता है और अरुन्धति के अंग-संग रहने वाला यह देखो वशिष्ट मण्डल कहलाता है। वशिष्ट मण्डल के ऊर्ध्वा भाग में मेरे प्यारे ! देखो स्वाति नक्षत्र है और स्वाति नक्षत्र के अंग-संग रहने वाला बेटा ! देखो वह वर्णकृत मण्डल कहलाता है। गणना करने लगता है तो बेटा ! इस सम्बन्ध ा में विशेष चर्चा न देता हुए केवल यह क्या मुनिवरो ! देखो ! प्रभु ही तो निर्माण करने वाला है माता के गर्भस्थल में बेटा ! देखो उनका समूह है, उनका जगत है। लघु-मस्तिष्क का निर्माण करता है, रेणकेतू-मस्तिष्क का निर्माण करता है प्रभु। तो मेरे प्यारे ! देखो यह आन्तरिक जगत है इस मानव शरीर का। तो इसी में बेटा ! जब तपों में परणित हो जाता है, तप करने लगता है तो बेटा ! यह सर्वत्र जगत इसके समीप आना प्रारम्भ हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे ! मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना न देता हुआ केवल विचार-विनिमय यह कि आज बेटा ! देखो हम अमृतम हे माता वसुन्धरा तू कल्याण करने वाली है। वसुन्धरा तू अपने गर्भ में हम जैसे शिशुओं का तू ध्यानावस्थित हो करके और अपने गर्भ से तू महान से महान बालक को जन्म देने वाली बन। ब्रह्मवेत्ता बना करके मानो तू अपने में सौभाग्यशाली बन। **तो मेरे प्यारे ! देखो यहाँ माताओं का अपना बड़ा महत्त्व माना गया है, इसको तप की आवश्यकता है।** मुझे स्मरण आता रहता है। मैंने कई समय बेटा ! महात्मा दुर्वासा की चर्चाएँ प्रगट की हैं। महात्मा दुर्वासा जिस विद्या को जानते थे। क्या वह मन्त्रों का उद्गीत गाते जब माता के गर्भ की धारणा अवरत हो जाती। तो उस समय महर्षि दुर्वासा एक वेद मन्त्र देते थे और वेद मन्त्रों का, जिस देवता को वह माता बनाना चाहती है उस देव परख वही मन्त्र होना चाहिए जिस मन्त्र का जपन

जापन होना चाहिए। उसका मानो देखो मन मस्तिष्क एकाग्र हो करके जब माता उसके ऊपर विचार विनिमय करती है तो वही देवताजन में देखो बालक का जन्म होता है। जैसे बेटा ! मैंने महाभारत के काल में तुम्हें चर्चा प्रगट करते हुए कहा था कि माता कुन्ती दुर्वासा के सहयोग से देखो जिस देवता की वह उपासना करती थी उसी देवता परख मानो देखो सन्तान को जन्म दिया। देखो धर्म के लिए वह धर्म का वेद मन्त्र उदगीत गाती तो धर्म का जन्म हुआ। देखो वायु का सेवन करने की विधि आई देखो उस वेद मन्त्र का उदगीत गाने लगी तो भीम का जन्म हुआ और देखो इन्द्र अंगों मंगल देवाः इन्द्राः जो इन्द्र है जो इन्द्र देवत्व को धारण करने वाला है उसकी उपासना करके विज्ञान में देखो उन्होंने जन्म दिया। तो मेरे प्यारे ! देखो माता अपने में बड़ी विचित्र कहलाती है। यदि माता बन जाए और वह वसुन्धरा बन करके रहे – हे वसुन्धरा तू हमारा कल्याण करने वाली वसुन्धनम कहलाती है। तू मानो देखो अपने गर्भ से एक महान पुत्रों को जन्म देने वाली बन और तू वैज्ञानिक बन। तू मानो देव परख वाली बन जिससे देखो देवता तेरी प्रशंसा करते रहे और देवता तेरे अंग-संग रहने वाले हों। मानो उन देवताओं को तू जानती इस सागर से पार होने का प्रयास कर।

मेरे पुत्रों ! देखो आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं केवल यह क्या हमें वरूण बना लेना चाहिए वर्णम् ब्रह्मा लोकाम्। मेरे प्यारे ! देखो प्रतीचीदिग् वरूणः यही वरूण है, देखो जो इस वरूण को जानता है प्रीचीदिग् को जानता है। मेरे प्यारे ! देखो वह दिशाओं का स्वामी बन जाता है और अन्नाद का मुनिवरो ! देखो अन्नाद बन जाता है। तो विचार विनिमय क्या, उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह क्या हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। बेटा ! परमात्मा के इस रहस्यतम, देखो रहस्यतम साहित्य में, वेद के मन्त्रों में ज्ञान विज्ञान की सूक्ष्मता नहीं है। वह

सदैव नवीन रहता है, वह वृद्धपन को प्राप्त नहीं होता। इसलिए बेटा ! उसको नवीन ही नवीन वाक्यों को उद्गीत गाता हुआ जैसे समुद्र में रमण करने वाला मेरे प्यारे ! देखो उसमें जब रत्त होता है तो जितना भी उसकी गहराई में परणित हो जाता है, उसके अन्तिम छोर पर चला जाता है, तो समुद्र में से, ऊर्ध्वा में से रत्नों को वह लाता रहता है। इसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान मानो देखो इनमें निहित रहता है। तो विचार आता है हे माता वसुन्धरा, तू वसुन्धरा है, हमें अपने में धारण करने वाली है। माता जब प्राणों को जानने लगेगी–प्राण को अपान में, अपान को व्यान में, व्यान को समान में, समान को उदान में-जब इन प्राणों के रहस्यों को जानने लगेगी तो माता बेटा ! देखो महानता में परणित होती है। राजा का कर्तव्य है कि राजा के राष्ट्र में इस प्रकार की विद्याएँ विद्यालयों में होनी चाहिए। जब इस प्रकार के वेद-मन्त्रों के आचार्य होंगे तो ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारी दोनों ही पवित्रता को प्राप्त होते रहेंगे। जैसा महर्षि यास्काचार्य ने मानो देखो अपने उद्गीत में गाया है। आचार्यों के लिए संकेत किया, उन्होंने कहा है हे आचार्यजनों ! तुम ऐसे अपने आचार को पवित्र बना करके और मानो इस वेद-मन्त्रों का तुम देखो विद्यार्थियों को वेदों का उद्गीत गाओ और वेद-मन्त्रों का जब यह ब्रह्मचारी उद्गीत गायेंगे तो तुम्हारा विद्यालय महान बनेगा। तुम्हारा विद्यालय, विश्वविद्यालय मानो शिक्षा का केन्द्र बन करके और क्रियाकलापों का केन्द्र बन करके तुम्हारा नामोकरण देवलोक में भी मानो तुम्हारे नामों का यशोगान होने लगेगा।

मेरे प्यारे ! देखो **देवपुरी** इसी को कहा जाता है तो आज का विचार-विनिमय क्या है? मेरे प्यारे ! देखो आज मैंने तुम्हें कुछ सूक्ष्म सी वार्ताएँ प्रगट की हैं। तो प्राचीदिग् का अभिप्रायः यह है क्या हम वरूण बनाए, अपना वरणीय परमात्मा को स्वीकार करें।

देवताओं को अपना वरूण बनाएँ। अग्नि देवताओं को वरूण बना करके देवता का नेतृत्व करने वाला हो, जो हुत को प्रदान करने वाला हो। मेरे प्यारे ! देखो इसी प्रकार यह प्राचीदिग् एक वरूण का स्वामी है, अन्नाद को देने वाला है। तो हमें प्राचीदिग् को जानना चाहिए। मानो देखो उसका, अक्षरों का बोधि होना, उसको जानना और जान करके क्रिया में लाने का नाम बेटा ! देखो ज्ञान विज्ञान में परणित होना है। तो आओ मेरे प्यारे ! देखो आज का विचार क्या है? आज मैं तुम्हें यह विचार दे रहा था कि परमपिता परमात्मा का ज्ञान सदैव नवीन बना रहता है। ज्ञान में मानो देखो न्यूनतम नहीं आता, वह सदैव एक रस रहने वाला है। एक रसता को विचारना चाहिए। तो मेरे प्यारे ! देखो आज का विचार यह कि हमारा जो पर्व है यह पर्वों का महत्त्व अपना बड़ा अपने में विशिष्ट माना गया है। इसके ऊपर विचारना, इसमें कोई न कोई साहित्यिक चर्चाएँ विद्यमान रहती हैं और उसके गर्भ में मानो ज्ञान रहता है। परमात्मा का एक देखो समवृति विद्यमान रहती है इसको विचारने के लिए मानव को एक समय प्राप्त होता है। **वह इन पर्वों को विचारता रहे और पर्व ही देखो मानव को नाना प्रकार की चेतना देते हैं, वही चेतना में सदैव तत्पर रहें।** तो प्रत्येक गृह में बेटा ! देखो त्रेता का काल, द्वापर का काल, सतोयुग के कालों में राजा, महाराजा यह प्रेरणा देते कि प्रत्येक गृह में सुगन्धि होनी चाहिए, प्रत्येक गृह में देखो प्रदूषण नहीं रहना चाहिए। **राष्ट्र में देखो प्रत्येक गृह में याग हों।** जिन यागों से देखो हमारा जीवन भरण हो जाए और कृषक देखो यह माता वसुन्धरा अपने अन्नाद को देखो प्राप्त कराती है। हमें अपने में जैसे माता पुत्र का समन्वय होता है इसी प्रकार प्रजा और देखो पृथ्वी माता का समन्वय होता है। दोनों एक दूसरे में पिता पुत्र की भाँति मानो देखो अपने में उसे पुकार करते चले जाएँ। तो बेटा ! देखो यह इसका अभिप्राय है, क्या हमारे यहाँ अमावस्य और देखो **अमावेष्टि और पूर्णेष्टि दो प्रकार के यागो का बड़ा**

महत्त्व माना गया है। यह चर्चाएँ तो बेटा ! बड़ी विशिष्ट मानी गई हैं मैंने तुम्हें संक्षिप्त परिचय दिया है। एक प्राचीदिग् की चर्चाएँ की हैं क्या हमें वरूण बनाना चाहिए। परमपिता परमात्मा को और माता को वसुन्धरा के रूप में स्वीकार करते हुए – माता अपने में बसाने वाली है और माता के गर्भस्थल में निर्माण होता है। वह निर्माणवेत्ता चैतन्य है। वह सर्वत्र लोक लोकान्तरों का भी निर्माण करने वाला है।

यह है बेटा ! आज का वाक्। कोई मानव यह कहे कि मैं नाअस्ति हूँ मानों देखो नाअस्ति का अभिप्राय क्या वह मानव को इतना अधूरेपन से रहता है कि वह मेरे पुत्रो ! देखो इतना संकीर्ण रहता है सूक्ष्मतम में रहता है क्या वह एक दूसरे प्राणी की भाषा में भी मानो उसे कठिनाई होती है। उनकी भाषा भी नहीं जानता वह परमात्मा की प्रतिभा को तो क्या जानेगा। तो विचार यह कि कोई अभिमान करे - परमात्मा के राष्ट्र में अभिमान नहीं किया जाता। **परमात्मा निरभिमानी है इसलिए मानव को निरभिमानी रहना चाहिए। परमात्मा अकाय है इसलिए काय के ऊपर अभिमान न करके अकाय के ऊपर विचार-विनिमय करना चाहिए। परमात्मा ज्ञानी है इसीलिए ज्ञान में रत्त रह करके अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए।** तो मेरे प्यारे ! यह आज का वाक् अब हमारा सम्पन्न होने जा रहा है। समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा।

दिनांक : 19 मार्च, 1992

स्थान : ग्राम लहोड़ा

॥ ओ३म् ॥

चार प्रकार के पुरुष

जीते रहो !

मेरे प्यारे ! विचारना यह है कि जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता इस अग्नि के ऊपर और वायु के ऊपर, जलों के ऊपर अनुसन्धान करते हैं और उन्हीं परमाणुओं को एकत्रित करके नाना प्रकार के यन्त्रों के आविष्कार करते हैं इसी प्रकार आध्यात्मिकवेत्ता जो जिज्ञासु है, आध्यात्मिकवादी जो पुरुष है, वह जो विचारता है कि मैं आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करने चलता हूँ तो वह यह विचारता है कि **मैं अपने चित्त को शान्ति देना चाहता हूँ** क्योंकि चित्त में परमानन्द आ जाये। आध्यात्मिकवेत्ता आत्मा के लिए चेतना के ऊपर वह अनुसन्धान करता है। आत्मा को जानने वाले चार प्रकार के पुरुष होते हैं। सबसे प्रथम तो जो मानव दुःखित होता है, द्वितीय अर्थार्थी होता है और तृतीय जिज्ञासु होता है और चतुर्थ ज्ञानी होता है, ये चार प्रकार के प्राणी होते हैं, जो आध्यात्मिक पिपासा के लिए अपने स्थली को त्याग देते हैं।

मुनिवरो ! सबसे प्रथम वह मानव है जो दुःखित होता है। दुःखी कौन है? वह दुःखी है जो यह नाना प्रकार का विडम्बनावाद है, रूढ़िवाद है जो मानो एक-दूसरे में मानव व्यथित होता रहता है उससे वह मानव दुःखित हो जाता है और वह यह उच्चारण करता है कि मैंने जब से जन्म लिया है, मैंने संसार में अपने जीवन में आनन्द का कोई श्वास नहीं लिया है। तो वह मानव यह नाना प्रकार का जो रचनावाद है मानो नाना प्रकार का जो विडम्बनावाद है उससे वह मानव दुःखित हो जाता है। मान-अपमान

के जगत् में रहने वाला जो मानव है वह सदैव दुःखित हो जाता है।

मुनिवरो ! जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा शिक्षा ग्रहण करते थे तो हम सदैव दुःखित नहीं थे। परन्तु जैसे एक शिष्य गुरु के द्वार आ पहुँचे तो महर्षि विभाण्डक जो महर्षि स्वाति मुनि के पौत्र होते थे जब वे आये तो वे बड़े दुःखी थे। उनके दुःख का कारण यह था कि वे माता की ममता, यह जो जगत् का व्यापार है यह मुझे जटिल किये जाता है। प्रभु ! इससे मुझे दूर कीजिये। आज जो मैं मान और अपमान में अपने जीवन को दृष्टिपात कर रहा हूँ तो मेरा अन्तरात्मा दुःखित होता है और यह कह रहा है कि मैंने जगत् में माता-पिता की सेवा की, मैंने जगत में नाना प्रकार का कार्य किया, उसके पश्चात् भी यह जगत् मुझे अपमानित किए रहता है, मुझे यह जगत् ताड़ना देता है। जब यह वाक्य उनके समीप आया। आगे निवेदन किया तो भगवन् ! मैं यह चाहता हूँ कि मैं इतना दुःखित हूँ कि मैं संसार के वैभव को भी नहीं चाहता। तो देखो वह मानव दुःखित कहलाता है और वह दुःखित हो करके अपनी स्थली को त्याग करके वह जिज्ञासुओं के द्वार जाता है और परमपिता परमात्मा की उपासना करने के लिए सदैव तत्पर हो जाता है। प्रकृतिवाद से दुःखित होने वाला जो मानव है वह अब परमात्मा के क्षेत्र में आनन्द को चाहता है।

इसके पश्चात् द्वितीय प्रकार के जिज्ञासु होते हैं। जिज्ञासु वे होते हैं जिनको यह जिज्ञासा होती है कि प्रभु ! यह जगत् क्या है? मैं माता के गर्भ में आया, गर्भ में निर्माणवेत्ता ने निर्माण किया। कौन निर्माणवेत्ता था? क्यों निर्माण हुआ? किसलिए निर्माण हुआ? मेरे जगत् में आने का मन्तव्य क्या था? तो वे मानव जिज्ञासु होते हैं। जिज्ञासु अपने आचार्यों के द्वारा अपने को समर्पित

करता हुआ यह कहता है कि प्रभु ! मेरा इस संसार में आने का उद्देश्य क्या है? मैं यह जानना चाहता हूँ। उस समय आचार्य जो बुद्धिमान होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं वे कहते हैं कि तुम्हारे आने का उद्देश्य है कि तुम किसी वस्तु से दूर हो गये थे। उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए तुम संसार में आये हो। इस मानव शरीर को तुमने प्राप्त किया है, यह प्रभु ने तुम्हें दिया है। तुम्हारा आने का उद्देश्य यह है जैसे विद्युत प्रकाश दे रहा है और विद्युत के प्रकाश में नाना प्रकार के प्राणी अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं। नाना प्राणी अग्नि के, विद्युत के उस प्रकाश में अपने को नष्ट कर देते हैं तो वह जो प्रकाश है वह अग्नि का प्रकाश है परन्तु वे जो प्राणी हैं जो प्राणी किसी काल में वास्तविक प्रकाश से दूर हो गये थे और वे प्रकृति के प्रकाश में आकर के अग्नि के जड़वत् प्रकाश में आकर के अपने प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं तो परिणाम क्या? इसी प्रकार **मानव के जीवन का उद्देश्य है इस जगत् में कि तुम किसी वस्तु से दूर हो गये थे, किसी प्रकाश से दूर हो गये थे। अब तुम उस प्रकाश के लिए आये हो उस प्रकाश को प्राप्त करो।** मेरे प्यारे ! हम मोक्ष में थे और मोक्ष की अवधि समाप्त होने पर हम चेतना से दूर हो गये तो आज हम उस चेतना से, उस आनन्द से दूर हो गये हैं। तो उस आनन्द की पिपासा के लिए हमारा जन्म होता है। तो ब्रह्मवेत्ता यह उसे निर्णीत कराता है और वह वाक्य उसके मस्तिष्क में आ जाता है। वह जिज्ञासा उत्पन्न करता रहता है, नाना प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न करता रहता है, नाना प्रकार की जिज्ञासा उसके मस्तिष्क में आती रहती हैं और जब नाना जिज्ञासा ब्रह्मवेत्ताओं से करता है तो ब्रह्मवेत्ता उसका उत्तर देते रहते हैं।

मुनिवरो ! इसके पश्चात् **तृतीय जो होते हैं वे अर्थार्थी होते हैं।** अर्थार्थी वे प्राणी होते हैं जो यह विचार कर रहे हैं कि मैं कितना अर्थार्थी हूँ, मैं कौन हूँ? मेरा जो यह शरीर है, यह क्या है? यह कितने तत्वों से निर्माण हुआ है? वे परमात्मा के आँगन को चलने का प्रयास करते हैं।

चतुर्थ प्रकार का ज्ञानी होता है। ज्ञानी कौन होता है? जो यह जानता है कि यह जो मानवीय जगत् है, यह जो रचनाकार है, जिसमें मुझे वास्तविकता दृष्टिपात नहीं हो रही है। एक मानव किसी को कटु वाक्य उच्चारण करके दोष आरोपण करता है तो दूसरा मधुरता से करता है परन्तु आरोपण दोनों करते हैं। एक मधुर वाक्य से करता है और दूसरा कटुता से करता है। कटुता वाला जो प्राणी होता है उसके मस्तिष्क में अपमान और हिंसा दोनों एक ही स्थली में रहते हैं और जो मधुरता से अपमानित करता है उसके गर्भ में मोह होता है। उसके मस्तिष्क में एक स्थली में मोह और द्वितीय स्थली में उसकी जिज्ञासा होती है। वह ज्ञानपूर्वक उसको जानता है जो करना चाहता है।

मेरे प्यारे ! ज्ञानी और अर्थार्थी का अन्तर्द्वन्द्व रहता है। जो मानव अहंकार और अपमान की दृष्टि से अपमानित करता है उस मानव का तो पुण्य समाप्त होता है और जो मानव ज्ञानपूर्वक किसी वस्तु का निर्णय लेना चाहता है और उसमें अभिमान नहीं होता उस मानव का पुण्य प्रबल होता चला जाता है। परिणाम यह कि ज्ञानी पुरुष जो होते हैं वे जानते हैं कि यह मेरी माँ है, ममता है। यह भौजाई है और इसका अन्तिम परिणाम क्या है? इसको वह जानता है। आज मेरे द्वारा मोह की उपलब्धि होती है, मोह आता है तो उसका अन्तिम परिणाम

क्या है? क्रोध आता है तो उसका अन्तिम परिणाम क्या है? ज्ञानी यह जानता है और जानता हुआ इनको त्यागता रहता है। ज्ञानी वह होता है जैसा मैंने इससे पूर्व काल में कहा कि अवस्था के साथ में मानव का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार उस परिवर्तन को ज्ञानी पुरुष जानता है और उस परिवर्तन को त्यागता रहता है, उस अवस्था को जो त्याज्य है उसको त्यागता रहता है और त्यागता हुआ ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता रहता है। जैसे योगाभ्यासी प्राणी ऋद्धि-सिद्धियों को त्याग देता है। वह केवल परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्राण को और ममता (मन) दोनों का सन्निधान करने में लगा रहता है। उसमें सूर्य की किरणें आ जाएँ, कोई भी पदार्थ आ जाओ उन्हें नष्ट करता रहता है मानो उन चमत्कारों को नष्ट करता रहता है। उन चमत्कारों के लोभ में नहीं फँसता। ब्रह्मवेत्ताओं ने यह कहा है कि संसार में जो द्रव्यपति हैं उनको प्रबल रूप में मत स्वीकार करो। आज तो मानव ऋद्धि-सिद्धियों में, चमत्कारों में रमण करने वाला है वह कोई प्रबल नहीं है। स्वर्ण की मात्रा एकत्रित करने वाला कोई प्रबल नहीं है। चन्द्रमा में, सूर्य मण्डलों में जाने वाला प्राणी भी प्रबल नहीं है। अरे ! प्रबल वह प्राणी है जो अपने को प्रभु को समर्पित कर देता है, वह प्राणी सँसार में, समाज में ऊर्ध्वगति को प्राप्त करने वाला है, वह ज्ञानी पुरुष कहलाता है।

ज्ञानी कौन होता है? जो प्रभु के समीप पहुँच जाता है और प्रकृति को जान करके इसके ऊपर विश्राम करने लगता है, वह प्रबल होता है, वही महान् होता है। तो हमें ऐसे महान् ब्रह्मवेत्ताओं के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। मुझे स्मरण आता रहता है पुरातन काल में राजा-महाराजाओं को यह ज्ञान होता था। उन्हें इतनी महत्ता होती थी कि उन्हें ऋषि-मुनियों के ऊपर, महापुरुषों के ऊपर विश्वास होता था। जो अपनी **प्रवृत्ति** को प्रभु को समर्पित कर देते हैं, उनके ज्ञान-विज्ञान समीप होता है।

दिनांक : 31 जुलाई, 1973

Who enjoys eternal bliss

Mahanand "O Sir, when the relation of the mind with the soul is terminated who enjoys the eternal bliss?

"O Son! It is the soul which enjoys the eternal bliss."

"Then Sir! Has the soul also got the power of reasoning? Who feels pleasure and pain -the mind or the soul?"

"Son! It is the mind which has the power of feeling pleasure and pain". "Then how can it be accepted that in the state of liberation the soul enjoys eternal bliss without the aid of the mind ?"

"It must be understood here that there is a difference between bliss and pleasure or pain. The feeling of pleasure and pain is derived from Nature and is realized by the mind through the medium of the organs of perception. Thus pleasure and pain are products of nature and these, together with the mind and other organs of the body are all material while bliss is spiritual and this being an innate quality of the soul· can be enjoyed by it without the aid of the mind."

"Right Sir! The mind is made of matter and realizes the material pleasure and pain. But, Sir ! does the mind not realize God?"

"O Son! Mind is material and the mind together with other material objects is related to the soul. Material objects cannot attain God. Soul alone can attain God and when it attains God its material relations cease. Just as a child, when in the womb of its mother gets its nourishment from the body of the mother but as soon as the pregnancy matures and delivery takes place all the connections of the child with the body of the mother cease, similarly when the soul attains God all its relations with the material objects come to an end.

And here comes to end my discourse of today.

•••

Spiritual lights

Preambulatory talk by Yogiraj Swami Yogeshwara Nand Ji before the lecture.

I have had some introduction of Brahmchari Ji. Accordingly, as I understand, if any body asks him anything, he does not necessarily dwell upon that subject in the course of his lecture. But it has been noticed that his sub-conscience which is as good as a temple, is always open for the Yogis in the form of a 'dharmashala'. Any such one can have an access and stay there. Earlier also one or two yogis have entered there and were responsible for the particular performance through his body. If it were his own knowledge (i.e. acquired in this very birth) he could in all probability, deliver the same to you consciously face to face. But the knowledge expressed through his person (in the state of trance) had been built up successively for thousands of years as he has been taking births. When he goes into the state of trance, only then the gateway of knowledge and wisdom reposed in him is unloicked. If it were something of a manipulated, cooked-hooked or a trained affair, he could utter all this wisdom consciously at his will at all times. But he is able to deliver his lecture only after entering into the particular state of trance.

It is a matter of great privilege for our India that we have a Yogi of his type in out midst. I also tried to oscillate my neck like him for a minute or so. In that short duration only my head started reeling. But it is a super natural or divine gift to him that he continues to oscillate his neck for an hour together and, in that state, words are uttered from him constituting profound knowledge and

wisdom. May he live long! I am wishing that as a sanyasi. This is my prayer !.

The manner in which he chants Vedic mantras and thereby propagates Vedic knowledge is a matter of great significance for us. No sermon of his is without reference to the Vedas. It looks as if he has incarnated only for the restoration of the Vedas and for the protection of the ancient Aryan culture. Although he is in the form of a man and a man is never omniscient whether he be a divine soul or a Yogi, nevertheless we always get newer and newer pieces of knowledge expounded in his lectures.

Today I would like to urge upon him to describe the divine lights or radiations which emanate from 'Brahmrandra' (the seat of intellect) and from the heart (the seat or feelings, and emotions). The subject may not be of much significance for the external world but, from the Yogic view point, it has a great bearing. With the help of Yogic vision I shall propagate the Divine lights through him. I hope he will make a specific elaboration about them on the basis of his own realization or as described by the ancient seers. I have described about 24 types of Divine radiations viz 'Satvic Jyoti', 'Bhaskar Jyoti', and 'Usha Jyoti' etc. pertaining to the senses, mind, intellect and organs of action. I hope that Brahmchari ji will throw further light upon these radiations. I am a Yogi of the present and he is a Yogi of the past. Let the Present and the Past co-ordinate to-day. You will please listen to him very calmly. I shall pray to God and also implore his subconscience for the sprouting of the knowledge latent therein and its expression through the words uttered from his mouth.

So spake Brahmchari Krishan Dutt Ji.

Be blessed!

Look sages! Today again, as before, I had been

revelling in the enchantment of some Ved-mantras. You must have also taken note of as to which of the Ved-mantras were recited by me today. In our culture the novel system of study and education has been recognized traditionally as holy and whole-some. The Ved-mantra which reverbarates with the man's heart beams out an extraordinary halo of glory. If the heart is not aligned with the recital of the Ved-mantra, no sense of pleasure is derived.

Today where is our Vedic recital pointing to ? Playing in tune with the subject-matter of the verses, I shall be dwelling upon those yogic thoughts, based on which our sages and seers have given out profound expressions. These expressions have been magnanimous and sublime from generations to generations. In our cultural tradition great philosophers, thinkers and austere practitioners used to sit together and deliberate upon a subject. To-day again I would like to put before you some of the views which the 'rishis' (sages) of yore used to dwell upon through years of research, experience and realization.

Once Maharishi Prabhan, Sandalya ji and Maharishi Kakari Muni Maharaj, all the three seekers of Truth, approached Maharishi Bhringi and asked, "Sir ! This species the human being is always curious to know about something or the other more and more. Why such an inquisitiveness, such a craving for knowledge remains in his bosom ? We would like to know something about this particualr craze" .

With these words of the seekers, Maharishi Bhringi, in his turn, approached Maharishi Bharadwaj because the latter was well versed in physical sciences and also knew how to collaborate them with spiritual wisdom. In his times Maharishi Bharadwaj used to express much about voice-culture, mind and intellect in various ways. He would make great effort in collaborating physical sciences with

spiritual wisdom, and it was his earnest desire to show that path to the world where both types of knowledge could go hand in hand. When that group of seekers reached his door, he said to Maharishi Bhrinqr,

"Welcome Maharishi Bhringi, the sage borne in Agni lineage! How have you happened to grace my place?"

Maharishi Bhringi said, "Sir! we want to know why man is ever intent to know, what is the basic reason behind it ?" There upon the rishi (Bharadwaj) observed. "The seat of intellect, which we call as 'Brahmrandra' has very fine conducting nerves which have their bearings with various worlds (the lokas) and with the five Tanmatras (subtlenesses). As a matter of fact the entire cosmos is said to have evolved out of the five 'Tan matras'. The heart of man is also like the cosmos. The cosmos is the heart of God. The various types of thought waves in man's heart, having become subtle, tend to be patent. So to say, the seeds, which were latent in the sleeping state become patent and start sprouting forth. The entire process owes its expression which to the very nature of the cosmos at large viewed microscopically, is said to be the heart of God. The cosmos is pregnant with sound vibrations. The various notes produced by the five Tanmatras permute, combine and compound themselves and impart to the cosmos an extraordinary character. Thousands of thought waves propagate in it. Vibrations of the vital force, 'Pran Shakti," animate it".

My dear Rishivars (sages) ! let me put it again in my own words. What is the fundamental cause of that inquisitiveness which is expressive of the man's heart? Our tiny brain, which is the repository of what is called as the 'Brahmrandra' in the upper cavity in the skull has nerve pleuxes. It has various types of conducting nerves which have their bearings on the mind. The various vibrations of the mind are related to the various nerves.

Some nerve is related to the Dhruv sphere, Some other is related to the Jethaye Star! another one is related to Mars! still another is related to the Moon. Similarly there are others which are related to the Sun, the Aruni sphere, Arundti sphere, Rohini star, the Manketu star, the Vashishtha MandaI, the Krika Mandai and so on. Those vibrations of the mind, which are in the sprouted-seed-form are nothing but the inquisitiveness of the mind. Because from mind only these vibrations actuate the nerves. The mind belongs to the world of matter. (the Prakriti), Nature. Therefore this entire planetarium of Nature, with all the worlds, constituting it, has relation with the mind through the nerves.

There are 84 types of waves which have been accepted by us originating from the mind. Accordingly these 84 types of waves are connected with the Brahmrandra. Again from each nerve there are about 72 types of waves which have their bearings with the various worlds and with the various Suns. When these waves of the mind with their vibrations, begin resurrecting the subtle body, at that time the Yogi, or the elevated being with the subtle body, starts realizing the vastness of this phenomenon-world. He experiences the capacity to pervade the various worlds.

My beloved seers ! I would not like to dive deeper into the subject. The undulations of the mind begin to translate themselves into the expressions of the intellect. Twenty-one types of Tanmatras (subtlenesses) begin to spring from the intellect. They have their bearings with the worlds of this vast universe, nay with the entire cosmos. Just as, when ghee is poured or offered into the fire, the fire is set ablaze, similarly these radiatoins from the intellect viz. Shvetketu, Rinika, Adhyat, Prachi, Astam etc. are induced into the cosmic world and produce beautiful, glorious waves.

What is the ‘ghee’, the essence which pervades

the cosmic world ? Look sages, ! What is called as Prana in our concepts has been considered as the pervading essence of the cosmic creation. ‘This Prana’ brings intellect into operation and when Prana & intellect come in contact with each other in cosmic, at that time the Yogi gets, into a state of static equilibrium and he acquires complete control over consciousness. The combination of knowledge and organs of action, through intellect, comes in contact with the mind stuff (chita) the strength of senses (lndrivas) bearing potent, each of these gives rise to the radiations and these radiations gaining strength come in contact with” Dev Loka”. Then the Yogi aquired knowldge of the working of the physical, subtle and causal bodies. Oh sages ! Maharishi Bhardwaj, while analysing words uttered by the mouth called Vayashti (pertaining to individual) said that the words thus uttered when pass from an individual to the cosmos, they give rise to thousands of radiations. Just as we communicate our thoughts to the cosmos through instruments. (the Radio) similarly a Yogi exerts his influence on others at a distance by concertrating his thoughts. Rishi Bharadwaj advises to control our thoughtwaves, because these very thoughtwaves are part of Yoga. When these thoughts are dominated by ‘Satwaguna’ (purity), the word uttered by the mouth goes round the world 284 times in a moment and when it is rlominated by ‘Rajoguna’ (activity based on desires), it revolves round the earth 384 times in a moment and when dominated by ‘Tamoguna’ (inertia), it goes round the earth 484 times in a moment. The Rishi advises not to utter impure words because if these impure words come into contact with the mind stuff (Anta Karna) of a saint his intellect will become polluted. Thus the impure words not only exert their impact on saints and Yogis, but also influence men at large. This will result in the loss of confidence in him leading to his worldly death. You will know your physical body only when you will acquire knowledge of yogic secrets.

Oh sages! it is necessary to acquire knowledge of the physical body before getting knowledge of the subtle body. Our Heart has two fold functions, one is connected with the 'Chita' and the other with the mind. There is a difference in the two functions. On this basis, Nature has three aspects; 'Satoguna', 'Rajoguna' and 'Tamoguna'. Mind is a product of Nature. Nature's three characteristics will be reflected in tte mind's working. Thus there appears a difference between Heart's vibrations and mind's vibrations. What ever "Chaitna" eme ges from the senses through the mind, has many forms i.e. our organs of touch, organs of hearing, organs of seeing and organs of smelling, Rishi Bharadwaj says, that millions of atoms pass into the stmosphere from 'Prana' which originate from the Navel. A scientist invents an instrument from these atoms. What is this instrument? It is the image of that man who has breathed out those atoms.

Oh sages ! when in this way each atom is fully researched-how many atoms each of earth, water, fire, air and atmosphere (Antraksh) escape through the nose and when a Yogi manages to control these atoms, he acquires such power (Yogic energy) as to count these atoms. Rishi Bhardwaja says that millions of atoms of earth, water, fire, air and outer space, (Antraksh) escape from the nose. The Yogi, through his yogic powers, combines these atoms and through these (atoms) on acquiring subtle body, can acquire physical body without taking birth. This is only possible when a Yogi acquires complete control over the atoms.

Oh sages ! In the same way radiations of many kinds emerge from our eyes. The chief of these impress our 'Chita' and this 'Chita' is closely related to our Atmana. (soul) With the help of these radiations we acquire knowledge of the world as well as of Yogic powers, by which a Yogi can roam in the universe. These very

radiations enable us to differentiate between a wife, sister & Guru. And when these are under the influence of 'Tamoguna' (Inertia), they create evil effects. Oh sages ! the radiations that escape from different organs are also different in number. Twenty four types of radiations emanate frorn the eyes. When a Yogi concentrates his mind on these radiations, he acquires knowledge of all the worlds. This knowledge acquired by the Yogi is as vast as the vast universe. The Rishis have probed into this knowledge. They have gone deep into this matter in the past and they shall continue to do so in future also. Once Swang Ketu asked Rishi Bhardwaja whether the knowledge of the different organs as related by him was all and no more? The Rishi replied that whatever he had related was according to' his ability. The coming Rishis can throw more light on this subject. Oh Son! the Rishi's heart is magnanimous and is free from pride. They completely surrender themselves to God and acquire knowledge of the world. O Sages ! man cherishes a desire to acquire knowledge all the time and as soon as his desire is fulfilled, he cherishes it no longer. Just as a mother feeds her child when the latter is restless. The child has a desire to suck milk and as soon as his desire for milk is satisfied the mother separates him from her breasts. This very desire to know a thing is called 'Ghrit' (Ghee) of 'Oev Loka'. Continue to make an offering of your thoughts to this 'Ghrit' and thus your thoughts will spread far and wide and give you vast knowledge which will be unlimited. Oh Sages ! Rishi Bhardwaja has said that just as from our organs of touch, many vibrations arise, similarly from our organs of hearing (ears) whose hearing apparatus is known by many names, i.e. "Surya-nit-nam Shabdawli Yantar" 'Shodani' 'Rain Ketu', 'Man Ketu' etc. etc., this can tolerate billions and billions of vibrations and when this limit is exceeded, man refuses to tolerate them (words) because our hearing appratus is too weak to hear it. O Sages! this proves that

our God-made appratus with the aid of Nature, has its limitations. From the words related to 'Satoguna' many other words spring up, some of them are connected with the senses (Indriyas) and through the 'Indriyas', it is linked up with the mind and from mind it is connected with intellect (Budhi) and 'Budhi' gets linked with 'Chita' and from 'Chita' it reaches 'Brahamrandra' and from Brahamandra it gets connected with the organs of hearing. 'Brahamrandra' is closely connected with 'Dev Loka'. Thus this organ of hearing, gets in touch with 'Dev-Loka' Oeu Loka is replete with words of millions of years which are indestructible. The Yogi through his yogic powers gets in contact with these words through mind & 'Prana' and thus acquires complete knowledge of the past and present, both of physical and subtle worlds. Just as Nature opera tes through the instrumentability of Spiritual Lights God, similarly this human body, through the instrumentability of Atman, operates and acquires all knowledge with the help of diferent organs.

Oh Sages! I remember the store of knowledge given by Rishi Bhardwaj, who was equally well versed in material as well as Spiritual science. By dint of material science he combined atoms & protons to manufacture instruments and with their help he was able to visit Mars, Venus, Moon etc. and through his yogic powers he was successful in acquiring Atmana (soul) and Parmatmana (God) Knowledge.

Oh Sages ! man through God's Contemplation concentrating on Mind & Prana, abondoning all pride, aquired yogic power and through this he acquired knowledge of this wonderful world.

Pujyapad Gurudev

Yogic Wisdom of the Ancient Rishies.

Parvachan Dated 12th April

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री वी.पी. सिंह, वसुंधरा, गाजियाबाद	250 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्रीमती शशि गुप्ता, नोएडा	125 रुपये
डॉ. ओ.पी. आर्य, आगरा	125 रुपये
श्री गुलजार सिंह, जगत पुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली	100 रुपये
श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़।	100 रुपये
श्री राहुल शर्मा, बैंगलोर	100 रुपये
श्री पराग शर्मा, नोएडा	100 रुपये

सूचना

सभी आजीवन सदस्यों व अन्य महानुभावों से नम्र निवेदन है कि उनके पास जो पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों के कैसेट व वीडियो कैसेट उपलब्ध हैं उसके विषय में निम्न पते पर सूचित करें जिससे कि उनको भी प्रकाशित किया जा सके।

वैदिक अनुसँधान समिति के आजीवन सदस्य बनने के लिए शुल्क 800 रु. और वार्षिक सदस्य बनने के लिए शुल्क 100 रु. है जिसको आप समिति के पते पर व निम्न पते पर डाक द्वारा भेजकर सदस्य बन सकते हैं।

डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रसाद, प्रकाशन मंत्री

ए-59, पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017

दूरभाष : (0)11-26498737

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	50.00
2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	50.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	50.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	50.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	50.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	50.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	25.00
9.	धर्म का मर्म	30.00
10.	शंका-निवारण	25.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	25.00
13.	देवपूजा	20.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	110.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	100.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	100.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	20.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	40.00
22.	महाराजा-रघु का याग	25.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	25.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	30.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	25.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	20.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	30.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	30.00
29.	याग-मन्जूषा	25.00
30.	आत्म-दर्शन	25.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	25.00
32.	याग और तपस्या	45.00
33.	यागमयी-साधना	30.00
34.	यागमयी-सृष्टि	25.00
35.	याग-चयन	25.00
36.	दिव्य-रामकथा	110.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	25.00
38.	दिव्य-ज्ञान	35.00
39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	80.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	25.00
41.	आत्म-उत्थान	30.00
42.	तप का महत्व	30.00
43.	अध्यात्मवाद	25.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	35.00
45.	वैदिक-प्रभा	30.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	35.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	30.00
50.	आत्मा का भोजन	35.00
51.	साधना	30.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	60.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	60.00
57.	माता मदालसा	40.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	60.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	65.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	70.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
	पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज एवम्, कर्म भूमि लाक्षागृह	10.00

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य संहीता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध है:

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जि. बागपत, (उ. प्र.)। दूरभाष : 01234 240395
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। दूरभाष : 0131 2606414
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष : 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली। 110017 दूरभाष : 011-26498737
5. श्री अनिल त्यागी, सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ. प्र.)। दूरभाष : 0120-4165802
6. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ. प्र.) दूरभाष : 9412002233
7. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) दूरभाष : 09412139333
8. श्री विवेक त्यागी, 16, अशोक कॉलोनो, अल्कापुरी, हापुड, (उ. प्र.)। दूरभाष : 0122-2316196
9. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ. प्र.)। दूरभाष : 0120-2642052
10. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110, मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ. प्र.) दूरभाष : 9899228860, 9871367937
11. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। दूरभाष : 9910589486
12. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ. प्र.) दूरभाष : 9313530505
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष : 011-23282088
14. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
15. मैं. विजय कुमार, हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष : 011-23977216
16. जवाहर बुक डिपो, बुढ़ाना गेट, आर्य समाज मेरठ शहर (उ. प्र.)।

उद्‌बोधन

आज कोई मानव सँसार में मिथ्यावाद उच्चारण करके नाना प्रकार के द्रव्य को एकत्रित कर लेता है। अरे मानव ! वह द्रव्य तेरे साथ नहीं जायेगा। तेरे साथ तो वही कर्म जायेगा जितना तुम अपने प्रभु से मिलान करते हो। आज तू अभिमान में विराजमान हो जाता है कि मैं इतना द्रव्यपति बन गया हूँ इतने गृह निर्माण किये हैं इनका मैं स्वामी हो गया हूँ परन्तु यह तेरे हृदय में अभियान है। यह अभिमान तुझे स्वयँ निगल के यहीं रह जायेंगे। परन्तु एक समय वह आयेगा कि यह अभिमान ही तुझे निगल जायेगा। मुझे महाराजा दुर्योधन ने क्या कहा था, महाराजा रावण ने क्या कहा था कि मैं विजयी बनूंगा। राम को आने नहीं दूंगा। रावण का चिन्ह भी नहीं रहा सँसार में। कहाँ है रावण? कहा है वह स्वर्ण लंका? वह इस पृथ्वी में रमण कर गयी। वह गृह दृष्टिपात भी नहीं आते। परन्तु हम कल्पना कर लेते हैं, विचारधारा बना लेते हैं कि रावण राजा था परन्तु उनका चिन्ह हमें प्राप्त नहीं होता।

पूज्यपाद-गुरुदेव

वर्ष 41 : अंक : 489
जून 2013

मूल्यः
पाँच रुपये

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों की अमृतवाणी को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से वैदिक अनुसंधान समिति ने बेवसाईट का शुभारम्भ किया है जिसका पताः

www.shringirishi.in

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक अनुसंधान समिति पंजी०

के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38,

शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।

(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-06-2013
Published on 5th day of the same month